नागरिक विविध

प्रेम चंद पंडित से पहले जे.

राम रतन,-याचिकाकर्ता,

बनाम

रजिस्ट्रार, पंजाब विश्वविद्यालय और अन्य,-प्रतिवादी।

1969 की सिविल रिट संख्या 2811।

5 जनवरी, 1970.

पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर 1969, खंड I और III विनियम 8-नियम 1,2,3 और 8-अनुशासनात्मक कार्यवाहियां-गंभीर दुराचार या अनुशासनहीनता के लिए छात्रों को निष्कासित करने या निष्कासित करने के लिए प्राचार्य की शक्तियां-कदाचार का एकल उदाहरण-चाहे निष्कासन या निष्कासन को उचित ठहराता हो-कुलपति द्वारा निष्कासन आदेश का संशोधन-चाहे सीमित हो-कुलपति की शक्ति-क्या आदेश के गुणागुण पर हस्तक्षेप करने का विवेकाधिकार है।

अभिनिर्धारित किया गया कि कदाचार का एक मात्र उदाहरण आम तौर पर संस्था से संक्षिप्त निष्कासन के योग्य नहीं होगा। यह किसी विशेष मामले की परिस्थितियों में कदाचार की प्रकृति पर निर्भर करता है। कदाचार का एक अकेला उदाहरण कुछ मामलों में इतना गंभीर और गंभीर प्रकृति का हो सकता है कि यह अपने आप में संस्थान से एक छात्र के निष्कासन के लिए एक पूर्ण औचित्य हो सकता है। हालाँकि, जहाँ एक छात्र अपनी पढ़ाई के लिए काफी उत्सुक होता है और वह इस धारणा के तहत छात्रों की एक असफल हड़ताल आयोजित करता है कि वह एक उचित कारण की मांग के लिए लड़ रहा है, तो यह संभव है कि वह उस विशेष अवसर पर भटक गया हो। छात्र की ओर से इस तरह की एक चूक कॉलेज से निष्कासन या निष्कासन जैसी गंभीर सजा की मांग नहीं कर सकती है और यह पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर, 1969, खंड I के नियम 8 में इस अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर घोर कदाचार के बराबर नहीं है।

अभिनिर्धारित किया गया कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि किसी छात्र को निष्कासित करने के प्राचार्य के आदेश में हस्तक्षेप करना कुलपति के विवेकाधिकार के भीतर है, लेकिन उस विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि मामले के सभी तथ्यों को देखने के बाद किया जाना चाहिए जो उनकी जानकारी में स्वतः या इच्छुक पक्ष के माध्यम से आए हैं। उसे उन सभी तथ्यों की जांच करनी होगी और यदि उन्हें देखने के बाद उन्हें लगता है कि उक्त आदेश में संशोधन की आवश्यकता है, तो वह मामले को सिंडिकेट के संज्ञान में ला सकता है, जिसका निर्णय तब अंतिम होगा। उसे केवल यह देखने की आवश्यकता नहीं है कि क्या प्राचार्य द्वारा उसके विरुद्ध निष्कासन का आदेश पारित किए जाने से पहले निष्कासित छात्र को अपनी स्थिति स्पष्ट करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था। यह उन चीजों में से एक है जिसकी वह जांच करेंगे लेकिन यह हस्तक्षेप केवल उस हद तक सीमित नहीं है।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के तहत याचिका में प्रार्थना की गई है कि प्रतिवादी संख्या 2 द्वारा पारित 12 अप्रैल, 1969 के निष्कासन आदेश को रद्द करने के लिए सर्टिओरारी, परमादेश या कोई अन्य उचित रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए।

याचिकाकर्ता के लिए वकील पी. एस. दौलता और सी. पी. सपरा।

डी. एस. नेहरा, वकील, प्रतिवादी संख्या 1 के लिए।

एम. एस. जैन, प्रतिवादी संख्या 2 के लिए एडवोकेट जनरल (हरियाणा)।

निर्णय

पैनडिट, जे. -यह राम रतन द्वारा दायर संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत एक याचिका है, जिसमें सरकारी नेहरू कॉलेज, झज्जर के प्राचार्य श्री बनवारी लाल शर्मा द्वारा पारित घोर दुराचार के मामले में शामिल होने के आदेश को चुनौती दी गई है। जिला रोहतक, प्रतिवादी नं. 2, 11 अप्रैल, 1969 को।

(2) याचिकाकर्ता के आरोपों के अनुसार वह B.Sc का छात्र था। (ऑनर्स।) उक्त महाविद्यालय का भाग ॥। उन्होंने B.Sc में केवल एक अंक से प्रथम श्रेणी से चूककर बहुत उच्च द्वितीय श्रेणी हासिल की। भाग ।, परीक्षा अप्रैल 1968 में आयोजित की गई। उस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद, उन्होंने अपना भाग ॥ पूरा करने के लिए उसी कॉलेज में दाखिला लिया। वहाँ एक प्रोफेसर राम प्रकाश पृथ्वी थे, जो छात्रों के कल्याण के लिए विभिन्न निधियों के खातों की जाँच करने के लिए 'बरसर' के रूप में कार्य कर रहे थे और जो प्राचार्य की हिरासत में थे। उक्त प्रोफेसर और प्राचार्य के बीच कुछ गलतफहमी थी। याचिकाकर्ता गणित में बहुत अच्छा था, एक ऐसा विषय जो प्रोफेसर पृथ्वी द्वारा पढ़ाया जाता था। उक्त प्रोफेसर ने अपनी आधी फीस की छूट के लिए याचिकाकर्ता के नाम की सिफारिश की। प्रधानाचार्य ने याचिकाकर्ता को तलब किया और प्रोफेसर पृथ्वी की सिफारिश मांगने पर उनकी नाराजगी से उन्हें अवगत कराया। याचिकाकर्ता के अनुसार, जिन छात्रों ने तृतीय श्रेणी प्राप्त की थी और तुलनात्मक रूप से अच्छी वित्तीय स्थिति में थे, उन्हें शुल्क में रियायत दी गई थी, लेकिन उन्हें ऐसी रियायत नहीं दी गई थी। याचिकाकर्ता के अनुसार, प्रिंसिपल को उसी सिफारिश के कारण उनके खिलाफ शिकायत थी।

2 सितंबर, 1968 को याचिकाकर्ता के वर्ग ने एक दिवसीय हड़ताल का आयोजन किया। उस दिन सभी छात्र कॉलेज से अनुपस्थित थे। छात्रों की मांगों को एक पोस्टर में सूचीबद्ध किया गया था और उन्हें अगले दिन, i.e., 3 सितंबर, 1968 को प्रिंसिपल द्वारा स्वीकार कर लिया गया था, जिसके परिणामस्वरूप छात्रों ने कक्षा में भाग लिया। मामले को दोनों पक्षों के बीच सौहार्दपूर्ण तरीके से सुलझा लिया गया। 3 सितंबर, 1968 और 24 दिसंबर, 1968 के बीच कुछ नहीं हुआ। बाद की तारीख को, कॉलेज से प्रवेश पत्र विश्वविद्यालय को भेजे गए और प्राचार्य ने प्रवेश पत्र पर याचिकाकर्ता के चरित्र को अनुकरणीय बताया। तथ्य से पता चला कि याचिकाकर्ता के खिलाफ उस तारीख को कोई आरोप लंबित नहीं था, जो किसी भी अनुशासनात्मक कार्रवाई का विषय हो सकता था। मार्च, 1969 के पहले सप्ताह में, प्रधानाचार्य ने याचिकाकर्ता को अपने कार्यालय में तलब किया और उन्हें याचिकाकर्ता की नाराजगी से अवगत कराया, क्योंकि बाद में प्रोफेसर पृथ्वी के समर्थन में लोक शिक्षण निदेशक, हरियाणा में एक प्रतिनियुक्ति का नेतृत्व किया गया था। जिनका, प्रधानाचार्य स्थानांतरण करना चाहते थे। याचिकाकर्ता ने समझाया कि छात्रों ने प्राचार्य के खिलाफ कुछ नहीं कहा और केवल संबंधित अधिकारी से अनुरोध किया कि वे इसके लिए किसी भी प्रस्ताव पर विचार न करें। वर्तमान सत्र की समाप्ति से पहले प्रोफेसर पृथ्वी का स्थानांतरण। उस तारीख के बाद 8 अप्रैल, 1969 तक कुछ नहीं हुआ। याचिकाकर्ता उस समय वार्षिक परीक्षा की तैयारी की छुट्टियों के दौरान अपने गाँव में था और इसकी तैयारी कर रहा था। 9 अप्रैल, 1969 को उन्हें 4 मार्च को एक पत्र मिला। 1969. प्रधानाचार्य से। जिसके अनुसार उन्हें 11 अप्रैल, 1969 को बाद वाले के सामने पेश होना था। याचिकाकर्ता ने ऐसा किया और यह जानकर आश्चर्यचकित हुआ कि प्रिंसिपल ने 2 सितंबर, 1968 की हड़ताल में याचिकाकर्ता द्वारा निभाई गई कथित भूमिका के लिए उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए कर्मचारियों के सदस्यों में से एक समिति का गठन किया था, जो उसके अपने गुट से थे। याचिकाकर्ता को अपने आचरण की व्याख्या करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था और उसे एक कागज पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया था, जिसे पढ़ने पर उसने पाया कि यह उसे निष्कासित करने का आदेश था। याचिकाकर्ता ने प्रधानाचार्य से अनुरोध किया कि वह परीक्षा की पूर्व संध्या पर उन्हें इस तरह से दंडित न करें और उन्हें अपने आचरण के बारे में बताने का अवसर दिया जाना चाहिए। याचिकाकर्ता को इससे बहुत नुकसान हुआ क्योंकि 19 अप्रैल, 1969 को होने वाली उनकी परीक्षा एल के लिए कुछ ही दिन बचे थे। रुपये देने के बाद। 5 विशेष शुल्क के रूप में और प्रोफेसर पृथ्वी की मदद से, याचिकाकर्ता, हालांकि, परीक्षा में उपस्थित हुए। यह 7 मई, 1969 को पूरा हुआ था। वे अपनी व्यावहारिक परीक्षाओं के लिए 2 जून, 1969 तक व्यस्त रहे। जुलाई, 1969 के पहले सप्ताह में, परीक्षा का परिणाम घोषित किया गया था, लेकिन याचिकाकर्ता का परिणाम रोक दिया गया था। विश्वविद्यालय से की गई पूछताछ से पता चला कि याचिकाकर्ता के निष्कासन के लिए एक अधिसूचना विश्वविद्यालय द्वारा प्राचार्य द्वारा पारित आदेश के अनुसरण में

जारी की गई थी। 14 जुलाई, 1969 को याचिकाकर्ता ने अपने अभिभावक के माध्यम से 11 अप्रैल, 1969 के आदेश को रद्द करने के लिए पंजाब विश्वविद्यालय के कुलपति से संपर्क किया। विश्वविद्यालय के कुलसचिव ने 1 सितंबर, 1969 को इस आशय का उत्तर भेजा कि कुलपति केवल इस तथ्य से चिंतित थे कि क्या प्राचार्य ने छात्र को अपनी स्थिति स्पष्ट करने का अवसर दिया था। चूंकि याचिकाकर्ता को उक्त अवसर दिया गया था, इसलिए उन्होंने प्राचार्य द्वारा की गई सिफारिश को स्वीकार कर लिया। इसके कारण 1 नवंबर, 1969 को इस न्यायालय में वर्तमान रिट याचिका दायर की गई।

प्रिंसिपल द्वारा दायर रिटर्न में, यह स्वीकार किया गया था कि याचिकाकर्ता B.Sc में केवल एक अंक से अपने प्रथम डिवीजन से चूक गया था। भाग I, परीक्षा अप्रैल, 1968 में आयोजित की गई। हालाँकि, इस बात से इनकार किया गया कि प्रिंसिपल और प्रोफेसर पृथ्वी के बीच कोई गलतफहमी थी। प्रधानाचार्य के अनुसार, यह गलत था कि याचिकाकर्ता कभी अपनी आधी फीस की माफी के लिए उनसे मिला था। प्रधानाचार्य ने गरीब लड़कों के मामलों की सिफारिश करने के लिए एक शुल्क रियायत समिति का गठन किया था और उस आधार पर वास्तविक मामलों में विभिन्न रियायतें दी गई थीं। यह कहना गलत था कि B.Sc. (ऑनर्स I) भाग II के छात्रों ने एक दिवसीय हड़ताल का आयोजन किया था। यह केवल कुछ ही छात्र थे, जिन्हें याचिकाकर्ता द्वारा उकसाया गया था, वे अनुपस्थित थे और वह भी 2 सितंबर, 1968 को कुछ अवधि के लिए। कॉलेज की दीवार पर एक रोस्टर के आधार पर ही अधिकारियों को पता चला कि प्रिंसिपल को पूर्व सूचना दिए बिना हड़ताल का आयोजन किया गया था। इस बात से इनकार किया गया कि छात्रों की मांगों को कभी भी प्रधानाचार्य के सामने प्रस्तुत किया गया था। याचिकाकर्ता को 7 सितंबर, 1968,27 नवंबर, 1968 और 24 दिसंबर, 1968 को आयोजित कॉलेज परिषद की बैठकों के समक्ष अपने आचरण की व्याख्या करने के लिए बुलाया गया था। याचिकाकर्ता के खिलाफ अभी भी लंबित जांच को देखते हुए, प्रधानाचार्य 'अच्छे' के अलावा उसके आचरण के बारे में कोई अन्य संकेत नहीं दे सके, जो प्रवेश पत्र पर ही छपा था। इस बात से इनकार किया गया कि याचिकाकर्ता के खिलाफ कोई भी आरोप 24 दिसंबर, 1968 को लंबित नहीं था, जो उसके खिलाफ किसी भी अनुशासनात्मक कार्रवाई का विषय हो सकता था। प्रधानाचार्य ने याचिकाकर्ता और उसके पिता को दिनांक 16 जनवरी, 1969 के संचार के माध्यम से 20 जनवरी, 1969 को उनसे मिलने के लिए कहा था। याचिकाकर्ता के पिता ने प्रधानाचार्य से मिलने की परवाह नहीं की। उसके बाद, प्रधानाचार्य ने याचिकाकर्ता के खिलाफ मामले को अंतिम रूप देने के लिए हस्तलेखन विशेषज्ञ की रिपोर्ट प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों के दो सदस्यों को नियुक्त किया। उस रिपोर्ट की प्राप्ति के बाद, 27 मार्च, 1969 को कर्मचारी परिषद की एक बैठक बुलाई गई और वहां 11 अप्रैल, 1969 को याचिकाकर्ता को बुलाने का निर्णय लिया गया, जब उन्हें अपना विश्वविद्यालय रोल नंबर लेने के लिए कॉलेज आना था। यह कहना गलत था कि याचिकाकर्ता को कभी भी अपने आचरण की व्याख्या करने का कोई अवसर नहीं दिया गया था या उन्हें शुरू में ही एक कागज पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया था, जिसे निष्कासन आदेश पाया गया था। वास्तव में, उन्हें पूरा अवसर दिया गया था, जैसा कि कर्मचारी परिषद की प्रक्रियाओं से स्पष्ट था। निष्कर्षों के आधार पर 11 अप्रैल, 1969 को एक आरोप पत्र तैयार किया गया था। उसी को याचिकाकर्ता को पढ़ा गया और उसी की एक प्रति उसे भी दी गई। याचिकाकर्ता की स्थिति, विभिन्न प्रश्नों के उसके उत्तर और उसके गवाहों के बयान लिए गए। हस्ताक्षर विशेषज्ञ की रिपोर्ट और हड़ताल के मूल पोस्टर सहित उस सभी सामग्री को देखने के बाद ही परिषद ने विवादित निर्णय लिया, जो याचिकाकर्ता द्वारा आंशिक रूप से लिखा गया था। उस निर्णय को तब याचिकाकर्ता को सूचित किया गया और उस पर उसके हस्ताक्षर किए गए।

(4) दोनों पक्षों की परिषद इस बात पर सहमत है कि कॉलेज का प्राचार्य किसी छात्र को घोर दुराचार या अनुशासनहीनता के लिए निष्कासित या निष्कासित कर सकता है, लेकिन इस शक्ति का प्रयोग उसके द्वारा सिंडिकेट द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन किया जाना है। (Vide Regulation No. 8 in Chapter III at page 142 of Panjab University Calendar, 1969 Volume I). उक्त नियम पैन जैब विश्वविद्यालय कैलेंडर 1969 खंड III के पृष्ठ 272 पर अध्याय XXXVIII में दिए गए हैं। उनमें से कुछ, जो इस मामले के उद्देश्य के लिए प्रासंगिक हैं, ये हैं -

(1) किसी छात्र को निष्कासित करने या निष्कासित करने से पहले, संबंधित कॉलेज का प्राचार्य छात्र को अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त और उचित अवसर देगा।

(2) निष्कासन या निष्कासन के प्रत्येक मामले की सूचना संबंधित कॉलेज के प्राचार्य द्वारा आदेश पारित किए जाने के तुरंत बाद विश्वविद्यालय के कुलसचिव को दी जाएगी और इसके साथ प्राचार्य द्वारा हस्ताक्षरित एक प्रमाण पत्र होगा, इस प्रभाव से कि आदेश पारित होने से पहले छात्र को अपनी स्थिति स्पष्ट करने का पर्याप्त और उचित अवसर दिया गया था।

(3) प्रधानाचार्य, दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए, मूल आदेश के 10 दिनों के भीतर अपने आदेश को संशोधित या समीक्षा कर सकता है। कारणों के साथ इस प्रकार पारित आदेश की सूचना तुरंत विश्वविद्यालय के कुलसचिव को दी जाएगी।

(4) * * * * * * * * (7)

(8) यदि कुलपति को लगता है कि किसी छात्र को निष्कासित करने या निष्कासित करने के प्राचार्य के आदेश में उसके संज्ञान में आने वाले तथ्यों के आलोक में संशोधन की आवश्यकता है, तो कुलपति इस मामले को सिंडिकेट के संज्ञान में ला सकता है जिसका निर्णय अंतिम होगा।

(5) वर्तमान मामले में, कॉलेज के प्राचार्य ने याचिकाकर्ता को घोर दुराचार के कारण एक वर्ष के लिए निष्कासित कर दिया था और इसलिए, निर्धारण के लिए प्रश्न यह है कि क्या उक्त आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

(6) विद्वत वकील द्वारा उठाया गया पहला तर्क यह था कि ऊपर उद्धृत नियम 1 में परिकल्पित पर्याप्त और उचित अवसर, प्रिंसिपल द्वारा याचिकाकर्ता को उसके खिलाफ विवादित आदेश पारित किए जाने से पहले अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए नहीं दिया गया था। लेकिन प्रधानाचार्य ने इस आरोप का खंडन किया। आइए अब हम जाँच करें कि क्या इस तर्क में कोई योग्यता है।

(7) 2 सितंबर, 1968 को, निम्नलिखित पोस्टर (रिट याचिका का अनुलग्नक 'ए') कॉलेज भवन की दीवार पर चिपकाया गया था।

"नेहरू कॉलेज में छात्र संघ, झज्जर की लाइव हड़ताल

हमारी माँगों को स्वीकार करें।

तानाशाही हटाएँ

(1) कॉलेज के वाइस-प्रिंसिपल श्री कक्कड़ की निरंकुशता 'तानाशाही' का अंत होने दें, जो उस दिन प्रिंसिपल के रूप में कार्य कर रहे थे।

(2) औषधालय बंद क्यों रहता है? कैसे फंड की राशि रु। प्रति वर्ष 7,000 का उपयोग किया जा रहा है?

(3) श्री ओ. पी. शर्मा (कॉलेज में एक प्रोफेसर) छात्रों के लिए अपमानजनक भाषा का उपयोग क्यों करते हैं और वह छात्रों के खिलाफ प्रिंसिपल से झूठी शिकायत क्यों करते हैं?

(4) लिपिक कर्मचारियों के अपने तरीके का अंत होने दें जो आपत्तिजनक है। वे कभी भी उचित व्यवहार नहीं करते हैं।

(5) कोई साइकिल स्टैंड नहीं है। एक साइकिल शेड होने दें। रुपये की राशि कहाँ है? इस संबंध में 7,000 विनियोजित किए गए?

(6) पानी की व्यवस्था होनी चाहिए। कुलरों की मरम्मत और रखरखाव ठीक से किया जा सकता है ताकि उनका उपयोग किया जा सके।

(7) पुस्तकालय को भोजनालय में क्यों बदल दिया गया है? किताबें क्यों नहीं जारी की जाती हैं? बैठने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए अच्छी व्यवस्था की जानी चाहिए।

(8) बैंक की पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं,

(9) छात्रों को निलंबित क्यों किया गया है? प्रयोगशाला सहायकों की गलती के लिए छात्रों को दोषी ठहराया गया है। ऐसा क्यों? निलंबन और जुर्माने का अंत होने दें। प्रत्येक विभाग की जाँच की जा सकती है।

नेता, छात्र संघ

नेहरू कॉलेज

झज्जर

(8) उसी दिन, याचिकाकर्ता के अनुसार, उसकी कक्षा, i.e., B.Sc। (ऑनर्स) भाग II ने एक दिवसीय हड़ताल का आयोजन किया और सभी छात्र कॉलेज से अनुपस्थित रहे। इन मांगों को प्रधानाचार्य द्वारा स्वीकार कर लिया गया और मामले को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया गया, छात्रों ने अगले दिन, यानी 3 सितंबर, 1968 को कक्षा में भाग लिया। दूसरी ओर, प्राचार्य का मामला यह था कि कोई हड़ताल आयोजित नहीं की गई थी, लेकिन केवल कुछ छात्र, जिन्हें याचिकाकर्ता ने उकसाया था, उस दिन अनुपस्थित थे और वह भी कुछ अवधि के लिए। पोस्टर के आधार पर ही अधिकारियों को पता चला कि उक्त छात्रों ने ऐसा कदम क्यों उठाया। प्राचार्य के अनुसार, 7 सितंबर, 1968 को कर्मचारी परिषद की एक बैठक "2 सितंबर, 1968 को प्रस्तावित असफल हड़ताल से उत्पन्न स्थिति पर चर्चा करने के लिए आयोजित की गई थी, जो कुछ ही समय के भीतर विफल हो गई और कॉलेज भवन की दीवार पर लगे पोस्टरों के रूप में अद्भुत और झूठे आरोपों और अभूतपूर्व और गलत मांगों के मूल कारणों की जांच करने के लिए"। उस बैठक की कार्यवाही इस प्रकार हैः -

"प्रधानाचार्य ने झूठे आरोपों और गलत मांगों पर अपनी जांच और प्रतिक्रिया का सार दिया। सदस्यों में से एक को दो राम रतनों के नामों पर संदेह था, रोल नंबर। 30 (याचिकाकर्ता) और B.Sc के 31। असफल हड़ताल के रिंग लीडर्स के रूप में द्वितीय वर्ष क्योंकि उन पर रु। कुछ दिन पहले भौतिकी प्रयोगशाला में एक भौतिकी उपकरण को तोड़ने और बाद में व्याख्याता सहायक (श्री हरद्वारी लाई) को धमकी देने और प्रयोगशाला में उसके साथ हाथापाई करने की कोशिश करने के लिए प्रत्येक को 10-10 रुपये दिए गए। इस मामले पर पूरी तरह से चर्चा की गई और परिषद ने श्री वाई. डी. शर्मा और श्री जे. एस. काकर से अनुरोध किया कि वे गुप्त रूप से मामले की जांच करें और यदि संभव हो तो यह पता लगाएं कि इस असफल हड़ताल के पीछे कौन था और अगली बैठक में चर्चा के लिए अपने निष्कर्षों को जल्द से जल्द रिपोर्ट करें। दोनों राम रतनों को अगली बैठक में परिषद के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहने का निर्णय लिया गया।

(9) उपर्युक्त कार्यवाहियों से पता चलेगा कि न्यायालय का कर्मचारी दो व्यक्तियों, अर्थात् याचिकाकर्ता और राम रतन पर रोल नं. 31, इंजीनियरिंग हड़ताल के लिए क्योंकि उन दोनों पर पहले रु। 10 प्रत्येक भौतिकी उपकरण को तोड़ने के लिए। यहां तक कि जब याचिकाकर्ता पर उसके दूसरे नाम के साथ संदेह किया गया था, तब भी एक महीने से अधिक समय तक कुछ नहीं हुआ और अगली बैठक 14 अक्टूबर, 1968 को हुई थी। उस बैठक में क्या हुआ, यह नीचे दिया गया हैः —

"इस उद्देश्य के लिए प्रतिनियुक्त सदस्यों ने अपनी जांच का सार दिया और कहा कि उनके द्वारा मूल दस्तावेज के बारे में एक सुराग के अलावा कुछ भी ठोस हासिल नहीं किया जा सका, जिससे पोस्टर टाइप/साइक्लोस्टाइल किए गए थे। सदस्यों ने परिषद को आगाह किया कि चूंकि मूल दस्तावेज प्राप्त नहीं किया जा सका है, इसलिए जल्द से जल्द मूल दस्तावेजों तक पहुंचने के लिए निष्कर्षों को गुप्त रखा जा सकता है।

राम रतन, B.Sc., रोल नं. 30, तब परिषद के समक्ष बुलाया गया था। जब वे परिषद के सामने आए तो प्राचार्य ने उनसे 2 सितंबर, 1968 की असफल हड़ताल के बारे में पूछताछ की और उनसे सवाल किया कि क्या वह इसके पीछे नहीं थे क्योंकि अभिलेखों से यह संदेह था कि (राम रतन) को हड़ताल का रिंग लीडर माना जा सकता था। इस

मामले में उन्हें क्या कहना था। राम रतन ने इस बात से पूरी तरह से इनकार किया कि इस मामले में उनका कोई हाथ था और उन्होंने आगे चुनौती दी कि अगर यह साबित किया जा सकता है कि हड़ताल में उनका (राम रतन) कोई हाथ था, तो वह अधिकारियों द्वारा किसी भी अनुशासनात्मक कार्रवाई के लिए उत्तरदायी थे, यहां तक कि निष्कासन भी। सदस्यों में से एक (श्री जे. एस. काकर) ने उनसे सवाल किया कि चूंकि वह और दूसरा राम रतन, (रोल नं. 31) रुपये का जुर्माना लगाया गया। 10 प्रत्येक कुछ दिन पहले, यह क्यों नहीं माना जाना चाहिए कि प्रस्तावित हड़ताल उनके (दोनों राम रतनों) उकसावे पर थी। राम रतन ने माँ को रखा। सवाल को दोहराने पर राम रतन ने कहा कि उनके पास इस मामले में कहने के लिए पहले की बात के अलावा और कुछ नहीं है। फिर उन्हें जाने के लिए कहा गया, प्रिंसिपल द्वारा उन्हें आगाह करने के बाद कि अगर यह साबित हो सकता है कि उनका (राम रतन) असफल हड़ताल में कोई हाथ था, तो उनके खिलाफ बहुत सख्त कार्रवाई की जाएगी।

राम रतन रोल नं. 31, (B.Sc.) II) को तब परिषद के समक्ष बुलाया गया और वही प्रश्न उनसे पूछे गए। उन्होंने इस मामले में अपनी अज्ञानता दिखाई और कहा कि वह कक्षाओं में भाग लेने के लिए तैयार थे, जबकि अन्य हड़ताल पर थे। उन्होंने हड़ताल के बारे में निर्दोष होने का अनुरोध किया और कहा कि इसमें कोई संदेह नहीं है कि उन पर एक लाख रुपये का जुर्माना लगाया गया था। 10 उपकरण को तोड़ने के लिए, यह दूसरा राम रतन (रोल नं। 30) जिसने व्याख्याता सहायक को पीटने की धमकी दी (Shri Hardwari Lal). उन्होंने आगे अपील की कि चूंकि वह एक गरीब लड़का था, इसलिए वह हड़ताल के बारे में नहीं सोच सकता था या दूसरों को इसके लिए उकसा नहीं सकता था। प्रिंसिपल ने तब उन्हें आगाह किया कि अगर यह साबित हो जाता है कि असफल हड़ताल में उनका कोई हाथ था, तो एक गंभीर विचार लिया जाएगा, उनसे सख्ती से निपटा जाएगा। फिर उसे जाने के लिए कहा गया। इसके बाद सभी सदस्यों ने श्री वाई. डी. शर्मा से आगे बढ़ने और आगे की जांच के लिए मूल दस्तावेज पर जाने का अनुरोध किया। अगली बैठक में परिषद के समक्ष दोनों राम रतनों को फिर से बुलाने का निर्णय लिया गया।

यह स्पष्ट होगा कि जब याचिकाकर्ता को परिषद के समक्ष बुलाया गया तो उसने हड़ताल के आयोजन में किसी भी तरह का हाथ होने से पूरी तरह से इनकार किया और इसके लिए जिम्मेदार पाए जाने पर उसे निष्कासित करने की पेशकश की। श्री वाई. डी. शर्मा से आगे की जांच के लिए मूल दस्तावेज प्राप्त करने का अनुरोध किया गया था।

(10) 27 नवंबर, 1968 को आयोजित कर्मचारी परिषद की अगली बैठक में फिर से लगभग एक महीने और 13 दिनों का एक और अंतराल था, और वहां यही हुआ-"श्री जे. एस. काकर ने तब अपनी जांच का सार दिया और इस संदेह की पुष्टि की कि राम रतन रोल नं. 30, का असफल हड़ताल में निश्चित रूप से हाथ था और चूंकि श्री वाई. डी. शर्मा अपनी बीमारी के कारण बैठक में उपस्थित नहीं थे और इसलिए छुट्टी पर थे, इसलिए उस समय तक मूल दस्तावेज नहीं मिल सका था। श्री जे. एस. काकर ने कहा कि मूल दस्तावेज को देखा गया था और जब श्री वाई. डी. शर्मा बीमारी से उबरेंगे तो उन्हें मिल जाएगा।

राम रतन, रोल नं. 30 (टी. डी. सी. II) को तब परिषद के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया जो उन्होंने किया। इसके बाद प्रधानाचार्य ने राम रतन से कहा कि परिषद के कुछ सदस्यों की जांच से पता चलता है कि असफल हड़ताल में उनका (राम रतन) हाथ था और सच बताना उनके (राम रतन) अपने हित में होगा। प्रधानाचार्य ने आगे कहा कि अगर वह सच बोलते हैं तो मामले में नरम रुख अपनाया जाएगा। सबसे पहले, राम रतन कुछ समय के लिए चुप रहे और फिर कहा कि उन्होंने कुछ नहीं किया है और वह प्रिंसिपल द्वारा उन पर लगाए गए दोष का सबूत चाहते हैं। सदस्यों के सुझाव पर प्रधानाचार्य ने राम रतन (रोल नं. 30) अपने पिता/अभिभावक को 10 दिसंबर, 1968 तक प्राचार्य से मिलने के लिए लाना, ताकि उसके पिता को उसके मामले के तथ्यों के बारे में बताया जा सके। राम रतन ने 1968 की 10 दिसंबर को अपने पिता को लाने का वादा किया था। फिर उसे जाने के लिए कहा गया।

बाद में दूसरा राम रतन (रोल नं. 31) परिषद के समक्ष उपस्थित होने के लिए बुलाया गया था। उन्होंने फिर से इस मामले में अपनी अज्ञानता दिखाई और राम रतन (रोल नं. 30) जो उसे अनावश्यक रूप से घसीट रहा था और फिर एक कहानी सुनाई कि राम रतन (रोल नं। 30) ड्यूटी पर एक डाक क्लर्क को गाली देने और बाद में जब वह घर जा रहा था तो उसके साथ हाथापाई करने का दोषी था और बाद में, जब पकड़ा गया, तो राम रतन, (रोल नं। 30) ने

लिखित में माफी मांगी, लेकिन अपना (रोल नं. 32) नाम और रोल नं. उसके अपने के बजाय गलत और इस प्रकार पुलिस ने उसे परेशान करने की कोशिश की (रोल नं। 31) अनावश्यक रूप से। प्रधानाचार्य ने इन तथ्यों की पुष्टि की और कहा कि राम रतन के खिलाफ मामला (रोल नं। 30) पुलिस के माध्यम से टिप्पणी के लिए उनके पास आया था और राम रतन पर मुकदमा चलाया गया होगा, लेकिन कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों के हस्तक्षेप के लिए। प्रधानाचार्य ने पोस्टमास्टर, झज्जर से मामले के बारे में पूछताछ करने और यह देखने का अनुरोध किया कि क्या इससे हमें हड़ताल के बारे में सुराग खोजने में मदद मिल सकती है। इसके बाद राम रतन को जाने के लिए कहा गया। इसके बाद बैठक का समापन श्री वाई. डी. शर्मा (अनुपस्थिति में) और श्री जे. एस. काकर से अनुरोध के साथ हुआ कि वे अगली बैठक में चर्चा के लिए जल्द से जल्द मूल दस्तावेज और सुराग प्राप्त करें।

(11) यह समझ में नहीं आता है कि मूल दस्तावेज, जो देखा गया था, उपरोक्त बैठक में क्यों नहीं लाया गया था। अगर प्रोफेसर शर्मा बीमार थे और छुट्टी पर थे, तो निश्चित रूप से प्रोफेसर काकर दस्तावेज़ को कर्मचारी परिषद के सामने ला सकते थे। यह तब याचिकाकर्ता के सामने रखा जा सकता था, जिसे बैठक से पहले बुलाया गया था और उससे पूछा जा सकता था कि यह उसकी लिखावट में था या नहीं।

(12) यह आगे प्रतीत होता है कि याचिकाकर्ता को इस समझ पर अपना अपराध स्वीकार करने के लिए मनाने के प्रयास किए जा रहे थे कि यदि उसने ऐसा किया, तो उसके साथ नरमी से व्यवहार किया जाएगा। हालांकि, याचिकाकर्ता अपने खिलाफ लगाए गए आरोपों से इनकार करने पर अड़ा रहा और उस पर लगाए जा रहे आरोप का सबूत चाहता था। इसके बाद, प्रधानाचार्य ने याचिकाकर्ता को 10 दिसंबर, 1968 को अपने पिता को भी अपने साथ लाने के लिए कहा, संभवतः यह सोचकर कि कर्मचारी परिषद पिता को अपने बेटे को हड़ताल में अपना हाथ स्वीकार करने के लिए मनाने में सक्षम होगी। कार्यवाही के अनुसार, याचिकाकर्ता ने 10 दिसंबर, 1968 को अपने पिता को लाने का वादा किया था। 10 दिसंबर, 1968 की कोई कार्यवाही न्यायालय के समक्ष नहीं रखी गई थी। लगभग एक महीने तक कुछ नहीं हुआ और अगली बैठक 24 दिसंबर, 1968 को हुई। उस बैठक की कार्यवाही निम्नलिखित हैः - श्री वाई. डी. शर्मा और श्री जे. एस. काकर ने सब पोस्टमास्टर से उधार लिए गए कागज के साथ मूल दस्तावेज प्रस्तुत किए। झज्जर, जो सब-पोस्ट मास्टर, झज्जर के संदर्भ में श्री राम रतन का एक माफी पत्र था। श्री वाई. डी. शर्मा और श्री जे. एस. काकर ने कहा कि हड़ताल से संबंधित पोस्टरों और माफी पत्र के बारे में दोनों मूल दस्तावेज एक ही हाथ के थे जिसमें राम रतन (रोल नं. 30) असफल हड़ताल में। श्री वाई. डी. शर्मा ने तब उन कठिनाइयों का वर्णन किया जिन्हें के को एक व्यक्ति (नाम का उल्लेख नहीं) से मूल दस्तावेज प्राप्त करने के लिए दूर करना पड़ा था, जिसे उन्होंने लिखित में आश्वासन दिया था कि उन्हें इस मामले में नहीं घसीटा जाएगा क्योंकि दूसरे पक्ष ने उन्हें गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी। सभी सदस्यों (दस्तावेज़ को देखने के बाद) की राय थी कि कम से कम राम रतन, रोल नं। 30, निश्चित रूप से हड़ताल को भड़काने वाले मुख्य सदस्यों में से एक था। उन्होंने कहा कि अगर राम रतन ने तब भी अपना अपराध स्वीकार किया और सही तथ्य बताए, तो एक नरम दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए, लेकिन अगर वह दूसरी ओर अन्यथा कहते हैं, तो एक गंभीर दृष्टिकोण लिया जाना चाहिए।

राम रतन, (रोल नं. 30) को अपने पिता/अभिभावक के साथ कॉलेज परिषद के समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा गया था। राम रतन, परिषद के सामने पेश हुए, लेकिन उनके पिता नहीं। राम रतन ने कहा कि उनके पिता दिल्ली में होने के कारण नहीं आ सके। जब प्रिंसिपल ने उनसे पूछा कि वह अपने पिता को उनसे (प्रिंसिपल) मिलने के लिए पहले क्यों नहीं लाए, तो राम रतन चुप रहे। प्रिंसिपल ने तब उन पर रिंग लीडर के रूप में आरोप लगाया और उन्हें अपना बचाव करने के लिए कहा क्योंकि सभी सबूत और दस्तावेज परिषद के पास थे। राम रतन इस पर भड़क गए और असंसदीय भाषा का इस्तेमाल किया, लेकिन जल्द ही उन्हें कारण देखने और सच बताने की सलाह दी गई, जिसे उन्होंने नकार दिया। परिषद के सुझाव पर उन्हें फिर से अपने पिता/अभिभावक को लाने के लिए कहा गया। 10 जनवरी, 1969 को प्रधानाचार्य से मिलने के लिए, जिसमें विफल रहने पर, प्राचार्य को लड़के के खिलाफ उचित कार्रवाई करने के लिए अधिकृत किया गया था।

(13) यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि जब मूल दस्तावेज 24 दिसंबर, 1968 को कर्मचारी परिषद के पास थे और परिषद के सदस्यों की निश्चित रूप से यह राय थी कि कम से कम याचिकाकर्ता हड़ताल को उकसाने का दोषी था, क्योंकि पोस्टर और माफी पत्र दोनों उसकी अपनी लिखावट में थे, तो उन्होंने उन दस्तावेजों को याचिकाकर्ता के पास यह स्वीकार करने या इनकार करने के लिए क्यों नहीं रखा कि वे उसके द्वारा लिखे गए थे या नहीं? यह वह सामग्री थी जिसके आधार पर उसके खिलाफ आक्षेपित कार्रवाई की गई थी। जब उन्होंने इस बात से इनकार किया था कि उक्त दो दस्तावेज उनकी लिखावट में नहीं थे, तभी उन्हें किसी लिखावट विशेषज्ञ के पास भेजने की आवश्यकता पड़ी होगी। यदि दस्तावेज़ वास्तव में उनके हाथ में होते, जैसा कि कर्मचारी परिषद के सदस्यों का विचार था, तो याचिकाकर्ता के लिए इस बात से इनकार करना बेहद मुश्किल होता कि वे ऐसे नहीं थे। यह भी स्पष्ट नहीं है कि वे याचिकाकर्ता के पिता के 24 दिसंबर, 1968 को उपस्थित होने की उम्मीद क्यों कर रहे थे, जब उन्हें उस तारीख को आने के लिए नहीं कहा गया था पुनः, प्रधानाचार्य के अनुसार, याचिकाकर्ता के खिलाफ सभी सबूत और दस्तावेज कर्मचारी परिषद के पास थे। यदि ऐसा था, तो याचिकाकर्ता के खिलाफ उसी दिन आरोप पत्र क्यों नहीं दायर किया जा सका। विशेष रूप से जब कहा जाता था कि जब उन पर रिंग लीडर होने का आरोप लगाया गया था तो उन्होंने भड़क गए थे और असंसदीय भाषा का इस्तेमाल किया था? एक अन्य बात जो उल्लेखनीय थी वह यह थी कि याचिकाकर्ता के प्रवेश पत्र को अस्थायी रूप से रोकने के बजाय, उसके आचरण को 'अच्छा' करार दिए जाने के बाद उसे विश्वविद्यालय को भेज दिया गया था। प्रत्यर्थियों की ओर से पेश वकील ने यह सुझाव नहीं दिया कि नियमों के तहत, प्रवेश प्रपत्रों को अस्थायी रूप से नहीं रोका जा सकता है या कुछ विलंब शुल्क का भुगतान करने के बाद भी उक्त प्रपत्रों को विश्वविद्यालय को नहीं भेजा जा सकता है।

(14) 24 दिसंबर, 1968 की बैठक के बाद, फिर से लगभग तीन महीने का अंतराल था, क्योंकि अगली बैठक 27 मार्च, 1969 को हुई थी। प्रधानाचार्य ने इस लंबे विलंब को समझाने की कोशिश की है-"राम रतन 10 जनवरी, 1969 तक अपने पिता को नहीं लाए थे। 16 जनवरी, 1969 को राम रतन के पिता को एक पंजीकृत पत्र भेजा गया था, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि वे अपने बेटे के घोर कदाचार में लिप्त होने के संबंध में 20 जनवरी, 1969 तक प्राचार्य से मिलें। उसके पिता को आने में कोई दिलचस्पी नहीं थी।

श्री वाई. डी. शर्मा को तब हस्ताक्षर विशेषज्ञ की रिपोर्ट प्राप्त करने का काम सौंपा गया था। श्री वाई. डी. शर्मा ने सांपला (रोहतक) में हस्तलेखन विशेषज्ञ से मिलने की कोशिश की लेकिन ऐसा नहीं कर सके। स्टेशन से बाहर होना। श्री वाई. डी. शर्मा और श्री जे. एस. काकर को मामले में तेजी लाने के लिए दिल्ली जाने के लिए कहा गया। उन्होंने हस्तलेखन विशेषज्ञ की रिपोर्ट प्राप्त की और उसे 24 मार्च, 1969 को प्राचार्य को सौंप दिया।

(15) यह आश्चर्य की बात है कि हस्ताक्षर विशेषज्ञ की राय लेने के लिए तीन महीने क्यों लिए जाने चाहिए। जैसा कि मैंने पहले कहा था, अगर दोनों दस्तावेज़ याचिकाकर्ता को दिखाए जाते और उसे यह स्वीकार करने या अस्वीकार करने के लिए कहा जाता कि क्या वे उनकी लिखावट में थे, तो लिखावट विशेषज्ञ की राय प्राप्त करने की आवश्यकता समाप्त हो जाती। यह लंबा विलंब किसी के मन में एक उचित संदेह पैदा करता है कि याचिकाकर्ता ने याचिका में जो आरोप लगाया था वह सही था। याचिकाकर्ता के अनुसार 24 दिसंबर, 1968 की बैठक तक उनके खिलाफ ऐसा कोई आरोप नहीं था जो किसी भी अनुशासनात्मक कार्रवाई का विषय हो। मार्च, 1969 के पहले सप्ताह में, याचिकाकर्ता को प्राचार्य द्वारा तलब किया गया था और उन्हें प्रोफेसर पृथ्वी के पक्ष में लोक शिक्षण निदेशक के लिए एक प्रतिनियुक्ति का नेतृत्व करने पर याचिकाकर्ता की नाराजगी से अवगत कराया गया था, जिसे प्राचार्य स्थानांतरित करना चाहते थे। भले ही याचिकाकर्ता ने प्राचार्य को समझाया था कि लोक शिक्षण निदेशक को उनके खिलाफ कुछ नहीं कहा गया था, जिन्हें केवल वर्तमान सत्र की समाप्ति से पहले प्रोफेसर पृथ्वी का स्थानांतरण नहीं करने का अनुरोध किया गया था, फिर भी, याचिकाकर्ता के अनुसार, प्राचार्य को उस कारण से उनके खिलाफ शिकायत थी और यह बताता है कि 27 मार्च, 1969 तक याचिकाकर्ता के खिलाफ कुछ भी नहीं किया गया था। जैसे ही प्रधानाचार्य को पता चला कि याचिकाकर्ता प्रतिनियुक्ति का नेतृत्व कर रहा है, उन्होंने लिखावट विशेषज्ञ की रिपोर्ट लेने और फिर याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही करने के बारे में सोचा।

(16) 27 मार्च, 1969 को, याचिकाकर्ता के संबंध में बैठक की कार्यवाही इस प्रकार थीः-"राम रतन के मामले पर चर्चा की गई और निर्णय लिया गया कि छात्र को विश्वविद्यालय रोल नंबर के लिए अपना रोल नंबर लेने के लिए परिषद के समक्ष फिर से उपस्थित होने के लिए कहा जाए, अर्थात अंतिम निर्णय के लिए 11 अप्रैल, 1969 को।

(17) एक बात महत्वपूर्ण है कि 27 मार्च, 1969 को भी याचिकाकर्ता को 11 अप्रैल, 1969 से पहले आने के लिए नहीं कहा गया था। उस तारीख को, रोल नंबर याचिकाकर्ता को दिया जाना था। कर्मचारी परिषद के सदस्यों को पता था कि याचिकाकर्ता विकलांग होगा और उस पर अपना अपराध स्वीकार करने के लिए दबाव डाला जाएगा। अगर उन्हें रोल नंबर नहीं दिया जाता, तो वे परीक्षा में नहीं बैठ पाते और इस तरह उन्हें एक साल का नुकसान उठाना पड़ता।

(18)11 अप्रैल, 1969 को याचिकाकर्ता के खिलाफ एक आरोप पत्र तैयार किया गया था और उसे कर्मचारी परिषद के समक्ष पढ़ा गया था और उसकी एक प्रति उसे सौंपने के बाद, उसे अपना बचाव करने के लिए कहा गया था क्योंकि उसे पहले ही पर्याप्त समय दिया जा चुका था। हस्ताक्षर विशेषज्ञ की रिपोर्ट भी याचिकाकर्ता को पढ़कर सुनाई गई और उनसे पूछा गया कि क्या उन्हें इसके बारे में कुछ कहना है। इस पर, उस तारीख की कार्यवाही के अनुसार याचिकाकर्ता ने "आरोप-पत्र के विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दिए, जो उसके अस्थिर मन को दर्शाते हैं, क्योंकि mid.-of में उसका बयान; be। पहले से दिए गए अपने बयान पर पुनर्विचार करने के लिए कुछ समय चाहते थे। उन्हें आधे घंटे की अनुमति दी गई जिसके लिए कर्मचारी परिषद की बैठक स्थगित कर दी गई। आधे घंटे के बाद राम रतन ने एक और बयान दिया जो उनके पिछले बयान और जवाबों के विपरीत था (His statement and replies written on a separate paper are attached herewith). संलग्न कागज में उनके हस्ताक्षर के साथ दिए गए उनके बयान/जवाबों को मिनट-बुक में चिपकाया जाता है। (यह वही रजिस्टर) कर्मचारी परिषद की बैठकों का। राम रतन ने तब एक राम सिंह B.Sc. के नाम का उल्लेख किया। द्वितीय वर्ष का छात्र, जिसने मूल पोस्टर में मांग लिखी थी जिसे बाद में किसी और ने फिर से लिखा था जिसका नाम उसने नहीं बताया था (even on asking repeatedly). लिखित मांगों में राम सिंह पर (राम रतन द्वारा) धारावाहिक नं. राम रतन द्वारा जोड़ी गई मांगों में से 3। राम सिंह को राम रतन की उपस्थिति में परिषद के समक्ष (शिपाई के माध्यम से) बुलाया गया और उनका बयान दर्ज किया गया। राम सिंह ने अपने बयान में राम रतन के बयान का खंडन किया। राम रतन जिरह पर राम सिंह के खिलाफ अपने आरोप को साबित नहीं कर सके। राम रतन ने तब रंजीत सिंह, B.Sc., II वर्ष, रोल नं। 208, अपने गवाह के रूप में। रंजीत सिंह का बयान भी दर्ज किया गया था (उनका बयान तैयार संदर्भ के लिए इस मिनट-बुक में संलग्न किया गया था) लेकिन गवाह यह भी नहीं बता सका कि राम सिंह ने मूल हस्तलिखित दस्तावेज पर लिखा था या नहीं। इसलिए, राम सिंह के खिलाफ आरोप की पुष्टि नहीं की जा सकी और इसलिए उन्हें कर्मचारी परिषद द्वारा छोड़ दिया गया। इसके बाद राम सिंह और राम रतन दोनों को फैसले का इंतजार करने के लिए कहा गया। परिषद के सदस्यों ने स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त किए। उन सभी की राय थी कि राम रतन निश्चित रूप से छात्रों को असफल हड़ताल के लिए उकसाने का दोषी था और उसने अपने हाथ से मूल दस्तावेज लिखा था जिससे पोस्टर टाइप/साइक्लोस्टाइल किए गए थे। उन सभी ने एक ही विचार व्यक्त किया कि राम रतन को 11 अप्रैल, 1969 से कम से कम एक वर्ष के लिए निष्कासित कर दिया जाना चाहिए।

(19) यह उल्लेखनीय है कि 11 अप्रैल, 1969 को याचिकाकर्ता को अपनी स्थिति स्पष्ट करने और आरोप पत्र का जवाब देने के लिए पर्याप्त और उचित अवसर नहीं दिया गया था। यदि कर्मचारी परिषद के सदस्य याचिकाकर्ता के खिलाफ मामले को अंतिम रूप देने के लिए इतनी लंबी अवधि तक इंतजार कर सकते थे, तो उन्हें उसे अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए कुछ उचित समय देना चाहिए था, खासकर जब यह अंतिम सुनवाई थी जब उसके खिलाफ अंतिम कार्रवाई की जा रही थी। उस दिन याचिकाकर्ता स्वाभाविक रूप से इस तरह के मन में होगा कि वह कर्मचारी परिषद के सदस्यों को नाराज नहीं करना चाहेगा, क्योंकि वह जानता था कि अगर उसने ऐसा किया तो उसे एक साल का नुकसान उठाना पड़ेगा। वह उन्हें खुश करने वाले किसी भी साधन को अपनाकर उनके दाहिने पक्ष में रहना चाहेगा। वह मन की एक भ्रमित स्थिति में होगा, क्योंकि उसकी परीक्षा काफी निकट थी और

आरोप पत्र का सामना करना पड़ा था, जब उन्होंने स्टाफ काउंसिल के सदस्यों को अप्रसन्न करने के परिणामों के बारे में सोचा तो वे स्पष्ट रूप से उलझन में पड़ गए। यह 11 अप्रैल, 1969 को कर्मचारी परिषद की बैठक से पहले उनके द्वारा दिए गए निम्नलिखित कथन से स्पष्ट होगा -

"आरोप-पत्र को परिषद के सामने छात्र को पढ़कर सुनाया गया। लड़का राम रतन रोल नं. 30, B.Sc., II वर्ष, ने स्वीकार किया कि उसने कुछ मांगों के पक्ष में छात्रों को हड़ताल पर जाने के लिए उकसाया। उन्होंने आगे कहा कि उन्होंने प्रधानाचार्य से मुलाकात की और छात्रों की ओर से प्रतिनिधि के रूप में मांगें प्रस्तुत कीं, हालांकि छात्रों द्वारा लिखित रूप में अधिकृत नहीं किया गया था। उन्होंने पहले मांग के पक्ष में छात्रों की संख्या 100,200,300,400 बताई, फिर कहा कि 400 छात्रों ने उन्हें प्रिंसिपल से मिलने के लिए कहा।

उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने अपने आवास पर 400 छात्रों की बैठक बुलाई थी। उन्होंने आगे कहा कि प्रधानाचार्य को मांग प्रस्तुत करने की तारीख ज्ञात नहीं है। हड़ताल की तारीख से 2/3 दिन पहले हो सकता है। उन्होंने दावा किया कि प्रधानाचार्य ने उन्हें आश्वासन दिया कि मांग पूरी की जाएगी और मांग की कोई रसीद नहीं ली गई। प्रधानाचार्य के कार्यालय के बाहर कोई शिपाई नहीं था।

उन्होंने श्री काकर को नोटिस दिया, क्योंकि प्राचार्य 2 सितंबर, 1968 को छुट्टी पर थे। यह नोटिस जुर्माने की माफी और मांगों के नोट के संबंध में था। उन्होंने धमकी दी कि अगर जुर्माना नहीं हटाया गया तो वे हड़ताल पर चले जाएंगे और लड़के के बयान के अनुसार, श्री काकर पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने छात्रों की एकता देखी है। श्री काकर ने इस आरोप का खंडन किया।

उनके बयान के अनुसार, B.Sc. बीमार वर्ष के छात्र 2 सितंबर, 1968 को पहले से ही हड़ताल पर थे।

कर्मचारी परिषद आधे घंटे के लिए स्थगित हो जाती है।

बाद में उन्होंने खुद अपने उपरोक्त बयान का खंडन करते हुए कहा कि वह उपरोक्त कहानी को फिर से लिखना चाहते हैं और कहा।

उन्होंने वास्तव में प्रिंसिपल से मांग के लिए मुलाकात नहीं की। उन्होंने माफी भी मांगी और अपने बारे में माफी मांगना चाहते थे। शुरुआत में अपमानजनक स्वर। उन्होंने कहा कि छात्रों की संख्या 400 नहीं बल्कि कुछ ही थी राम सिंह उन लोगों में से एक थे जो मूल पोस्टर में मांगें लिख रहे थे। बाद में इसे किसी और ने लिखा जिसका नाम उन्होंने नहीं बताया था। बाद में राम सिंह टीडीजी द्वितीय वर्ष के छात्र को सीरियल नं. 3 एक जोड़ के रूप में हरे स्याही में मेरे द्वारा लिखा गया। उनका कहना है कि उन्हें उन छात्रों के अलावा अन्य व्यक्तियों के बारे में कोई जानकारी नहीं है जो हड़ताल करने, हाथ से लिखी मांगों को छापने आदि की इस योजना में एक पक्ष थे।

पहले बयान में जो मैंने गलत कहा था, वह किसी और के कहने पर नहीं दिया गया था। यह मेरी अपनी सोच थी जिसके लिए मुझे गहरा खेद है। परीक्षा की निकटता के कारण मैं मानसिक रूप से परेशान था "", श्री राम रतन की अपनी लिखावट में दिए गए हिंदी कथन का अनुवाद।

माननीय प्रधानाचार्य साहब, और प्रोफेसर साहब, मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूं जो सामान्य ज्ञान की कमी के कारण किया गया था। मुझे बहुत खेद है। मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि इस गलती के लिए मुझे माफ कर दें। यह कैरियर का सवाल है "।

(20) मैंने जो ऊपर कहा है, उसे ध्यान में रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विद्वत वकील द्वारा उठाए गए पहले तर्क में सार है कि प्रधानाचार्य ने याचिकाकर्ता को उसके विरुद्ध निष्कासन का आदेश पारित किए जाने से पहले अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त और उचित अवसर नहीं दिया था।

(21) विद्वत वकील का दूसरा तर्क यह था कि याचिकाकर्ता को 10 दिनों के भीतर प्राचार्य के समक्ष अपने निष्कासन के आदेश के खिलाफ पुनरीक्षण दायर करने से वस्तुतः वंचित कर दिया गया था, जैसा कि पंजाब

विश्वविद्यालय कैलेंडर 1969, खंड III के पृष्ठ 272 पर अध्याय XXXVIII में दिए गए नियम 3 में परिकल्पित किया गया था, जो पहले ही ऊपर उद्धृत किया गया था। यह तर्क दिया गया कि निष्कासन आदेश 11 अप्रैल, 1969 को पारित किया गया था, और उक्त संशोधन को 10 दिनों के भीतर, यानी 21 अप्रैल, 1969 को या उससे पहले दाखिल किया जाना था। वार्षिक परीक्षा 19 अप्रैल, 1969 को शुरू होनी थी। याचिकाकर्ता स्वाभाविक रूप से उस परीक्षा में बैठने की अनुमति प्राप्त करने के लिए उत्सुक था और प्राचार्य के समक्ष पुनरीक्षण दाखिल करने के बारे में सोचने के बजाय इसकी तैयारी भी करता था।

(22) इस प्रस्तुतिकरण में भी योग्यता है। उस समय जब द. निष्कासन का विवादित आदेश पारित किया गया था, याचिकाकर्ता परीक्षा में बैठने और उसके लिए हर मिनट का उपयोग करने की अनुमति लेने के लिए अधिक उत्सुक था। वह निश्चित रूप से एक संशोधन दायर करने के बारे में नहीं सोच रहे होंगे, क्योंकि मन की उस स्थिति में उन्होंने उस उपाय को केवल समय की बर्बादी माना होगा, क्योंकि यह निश्चित नहीं था कि उस पाठ्यक्रम का पालन करने से उन्हें कोई राहत मिल सकती है। वह पहले पाठ्यक्रम को अपनाना पसंद करेंगे, जो प्रक्रिया का पालन करने के बजाय उनके लिए अधिक फायदेमंद साबित होता, जिसका परिणाम बहुत अनिश्चित था।

(23) विद्वत वकील का तीसरा तर्क यह था कि आक्षेपित आदेश प्राचार्य द्वारा गुणदोष के आधार पर नहीं, बल्कि बाह्य विचारों के कारण पारित किया गया था। अतः उक्त आदेश दुर्भावनापूर्ण था और उस आधार पर रद्द किया जा सकता था।

(24) याचिकाकर्ता के वर्ग ने 2 सितंबर, 1968 को एक दिवसीय हड़ताल का आयोजन किया। प्रधानाचार्य के अनुसार, केवल कुछ छात्र ही अनुपस्थित थे और वह भी कुछ समय के लिए। छात्रों ने 3 सितंबर, 1968 को कक्षा में भाग लिया। 3 सितंबर, 1968 और 24 दिसंबर, 1 धारा 68 के बीच कुछ नहीं हुआ। बाद की तारीख को, कॉलेज से प्रवेश पत्र विश्वविद्यालय को भेजे गए और याचिकाकर्ता का प्रवेश पत्र भी प्राचार्य द्वारा उसके आचरण को "अच्छा" बताए जाने के बाद भेजा गया। मार्च, 1969 के पहले सप्ताह में, प्राचार्य ने याचिकाकर्ता को अपने कार्यालय में बुलाया और उसे बताया कि वह प्रोफेसर पृथ्वी के समर्थन में लोक शिक्षण निदेशक, हरियाणा में एक प्रतिनियुक्ति का नेतृत्व करने पर बहुत नाखुश थे, जिन्हें पूर्व स्थानांतरित करना चाहते थे। याचिकाकर्ता ने प्राचार्य को समझाया कि छात्रों ने उनके खिलाफ कुछ नहीं कहा था और केवल संबंधित अधिकारी से वर्तमान सत्र की समाप्ति से पहले प्रोफेसर पृथ्वी के स्थानांतरण के किसी भी प्रस्ताव पर विचार नहीं करने का अनुरोध किया था। याचिकाकर्ता के अनुसार, प्राचार्य को अभी भी उस कारण से उनके खिलाफ शिकायत थी और इसलिए 27 मार्च, 1969 तक उनके खिलाफ कुछ नहीं किया गया था। इसके तुरंत बाद प्राचार्य को पता चला कि याचिकाकर्ता ने प्रोफेसर पृथ्वी के पक्ष में लोक शिक्षण निदेशक के पास एक प्रतिनियुक्ति का नेतृत्व किया था। उन्होंने लिखावट विशेषज्ञ की रिपोर्ट प्राप्त करने और फिर याचिकाकर्ता के खिलाफ कार्यवाही करने के बारे में सोचा। 9 अप्रैल, 1969 को, याचिकाकर्ता, जो प्रारंभिक छुट्टियों के दौरान अपने गाँव में था, को प्राचार्य से दिनांक 4 अप्रैल, 1969 का एक पत्र प्राप्त हुआ, जिसके अनुसार उसे 11 अप्रैल को बाद वाले के समक्ष उपस्थित होना आवश्यक था। 1969 में। याचिकाकर्ता ने ऐसा किया और उस तारीख को उसके खिलाफ विवादित आदेश पारित किया गया। इन सब बातों ने मन में एक उचित संदेह पैदा कर दिया कि याचिकाकर्ता द्वारा लगाया गया आरोप कि उसके खिलाफ निष्कासन का आदेश प्राचार्य द्वारा बाहरी विचारों के लिए पारित किया गया था, सही था। आक्षेपित आदेश कॉलेज में हड़ताल करने में याचिकाकर्ता की ओर से गंभीर कदाचार के कारण नहीं दिया गया था, जैसा कि प्राचार्य ने आरोप लगाया था।

(25) विद्वत वकील का चौथा निवेदन यह था कि तत्काल मामले में पाए गए तथ्यों पर भी, यह नहीं कहा जा सकता था कि याचिकाकर्ता घोर दुराचार का दोषी था जो उसे कॉलेज से निष्कासित किए जाने की इतनी गंभीर सजा का आह्वान कर सकता था।

(26) प्रिंसिपल द्वारा दायर रिटर्न के अनुसार, यह कहना गलत था कि B.Sc। (ऑनर्स।) भाग II के छात्रों ने एक दिवसीय हड़ताल का आयोजन किया था। यह केवल कुछ छात्र थे, जिन्हें याचिकाकर्ता द्वारा उकसाया गया था,

अनुपस्थित थे और वह भी 2 सितंबर, 1968 को कुछ अवधि के लिए। कॉलेज की दीवार पर लगे एक पोस्टर के आधार पर ही अधिकारियों को पता चला कि प्रिंसिपल को पूर्व सूचना दिए बिना हड़ताल का आयोजन किया गया था। यहां तक कि दिनांक 11 अप्रैल, 1969 की कर्मचारी परिषद की बैठक की कार्यवाही के अनुसार, याचिकाकर्ता द्वारा की गई हड़ताल केवल "निष्फल" थी। जब प्रधानाचार्य और कर्मचारी परिषद के अनुसार, वास्तव में कोई हड़ताल नहीं थी, तो इस तरह की घटना को बेहतर ढंग से नजरअंदाज कर दिया जाना चाहिए था। किसी भी मामले में, याचिकाकर्ता को इतना गंभीर जुर्माना नहीं दिया जाना चाहिए था। उन्हें भविष्य में इस तरह की गतिविधियों में शामिल नहीं होने की चेतावनी दी जानी चाहिए थी। यह कार्रवाई तब और अधिक अनावश्यक हो गई जब याचिकाकर्ता के शैक्षणिक जीवन को ध्यान में रखा गया। अगर वह ईमानदारी से अपनी पढ़ाई नहीं कर रहा था और केवल परेशानी पैदा करने में लगा हुआ था, तो एक अलग कार्रवाई की जानी चाहिए थी। प्रधानाचार्य ने अपने रिटर्न में स्वीकार किया है कि याचिकाकर्ता अप्रैल, 1968 में आयोजित B.Sc., भाग। परीक्षा में केवल एक अंक से अपनी प्रथम श्रेणी से चूक गया था। इससे पता चला कि याचिकाकर्ता अपनी पढ़ाई के लिए काफी उत्सुक था और यह संभव था कि वह उस विशेष अवसर पर भटक गया होगा। इसके अलावा, ऊपर उल्लिखित पोस्टर एच (रिट याचिका के अनुलग्नक 'ए') में छात्रों द्वारा की गई मांगों, जिसके कारण हड़ताल हुई, को भी बहुत अनुचित या अनुचित नहीं कहा जा सकता है। याचिकाकर्ता के अनुसार, उन मांगों को प्राचार्य द्वारा 3 सितंबर, 1968 को स्वीकार किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप छात्र तब कक्षाओं में उपस्थित हुए और मामले को दोनों पक्षों के बीच सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया गया। दूसरी ओर प्रधानाचार्य का मामला यह था कि उक्त मांगों को उनके सामने कभी प्रस्तुत नहीं किया गया था।

लेकिन उनके अनुसार, कॉलेज की दीवार पर लगे पोस्टर के आधार पर ही अधिकारियों को पता चला कि हड़ताल का आयोजन किया गया था। यह मानते हुए कि याचिकाकर्ता सही या गलत रूप से इस धारणा के तहत था कि वह एक न्यायसंगत कारण के लिए लड़ रहा था और प्रिंसिपल का विचार था कि याचिकाकर्ता छात्रों को हड़ताल पर जाने के लिए उकसाकर अनुशासनहीनता पैदा कर रहा था, याचिकाकर्ता की ओर से इस तरह की एक चूक इतनी गंभीर सजा का आह्वान नहीं कर सकती थी और पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर, 1969, खंड। के पृष्ठ 142 पर नियम 8 में इस अभिव्यक्ति के अर्थ के भीतर घोर कदाचार नहीं हो सकता था।

(27) जो दृष्टिकोण लिया गया है, वह मेहर सिंह, जे. द्वारा साधु राम-हरदवारी लाई बनाम प्राचार्य, राजिन्द्रा कॉलेज, भटिंडा और अन्य में दिए गए विवरण में समर्थन पाता है, जहां यह कहा गया था-"किसी विद्वान को निष्कासित करने का किसी शैक्षणिक संस्थान के प्रमुख का अधिकार निरंकुश या अनियंत्रित नहीं है, बल्कि यह सीमाओं के अधीन है (ए) कि उसे मनमाने ढंग से और आधारों पर निष्कासन की अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करना है जो उचित नहीं हैं और (बी) कि कदाचार का एक अकेला मामला सामान्य रूप से संस्थान से संक्षिप्त निष्कासन के योग्य नहीं होगा। यह दूसरी शर्त किसी विशेष मामले की परिस्थितियों में कदाचार की प्रकृति पर निर्भर होनी चाहिए क्योंकि दुराचार का एक अकेला उदाहरण इतना गंभीर और गंभीर प्रकृति का हो सकता है कि यह अपने आप में संस्थान से किसी विद्वान के निष्कासन का पूर्ण औचित्य हो सकता है।

मामले के तथ्यों पर अभिनिर्धारित किया गया कि प्रिंसिपल ने कदाचार के एकमात्र उदाहरण पर याचिकाकर्ता को निष्कासित करने में उचित नहीं था; यह मानते हुए कि याचिकाकर्ता ने एक छात्रा को पत्र लिखा था, प्रिंसिपल ने उचित तरीके से कार्य नहीं किया, बल्कि याचिकाकर्ता की निंदा करने पर प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के विपरीत कार्य किया। इस प्रकार मामले से निपटने और याचिकाकर्ता के निष्कासन का आदेश देने में प्रधानाचार्य ने उचित आधार पर कार्रवाई नहीं की, जो याचिकाकर्ता को निष्कासित करने के उनके अधिकार से अधिक था। इस दृष्टिकोण से याचिकाकर्ता के निष्कासन के आदेश को प्रमाणपत्र की रिट जारी करके रद्द किया जा सकता था।

जहां याचिकाकर्ता को कॉलेज में एक छात्र के रूप में बने रहने का अधिकार था और उसे केवल उचित आधार पर निष्कासित किया जा सकता था, एक बार जब कानून के तहत उसका वह अधिकार उसके कदाचार के बारे

में प्रिंसिपल के निर्णय से प्रभावित होता है, तो यह अनुमान लगाया जाता है कि याचिकाकर्ता के ऐसे अधिकार को प्रभावित करने के लिए प्रिंसिपल में निहित अधिकार का अर्ध-न्यायिक रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए।

(28)विद्वान वकील का पाँचवाँ और अंतिम तर्क यह था कि याचिकाकर्ता को पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर, 1969, खंड III के अध्याय XXXVIII में उल्लिखित नियम 8 की गलत व्याख्या के कारण पंजाब विश्वविद्यालय के कुलपति द्वारा अपने मामले की पुनः जांच के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। कुलपति का यह विचार गलत था कि नियम 8 के तहत जो कुछ भी देखा जाना था, वह यह था कि निष्कासित व्यक्ति को कॉलेज के प्राचार्य द्वारा उसके खिलाफ निष्कासन का आदेश पारित करने से पहले अपनी स्थिति स्पष्ट करने का पूर्ण और स्पष्ट अवसर दिया गया था। यदि ऐसा किया गया था, तो कुलपति ने उक्त नियम के तहत प्राचार्य के आदेश में हस्तक्षेप नहीं किया (रिट याचिका के अनुलग्नक 'डी' के माध्यम से)

नियम 8 में कहा गया है-"यदि कुलपति को लगता है कि किसी छात्र को निष्कासित करने या निष्कासित करने के प्रिंसिपल के आदेश में उसके संज्ञान में आने वाले तथ्यों के आलोक में संशोधन की आवश्यकता है, तो कुलपति मामले को सिंडिकेट के संज्ञान में ला सकता है जिसका निर्णय अंतिम होगा।

(29) उक्त नियम के एक सादे पठन से पता चलेगा कि कुलपति की शक्तियां कुलपति द्वारा सुझाए गए तरीके से सीमित नहीं हैं, जैसा कि रिट याचिका के अनुलग्नक 'डी' से स्पष्ट था। यह सच है कि यह विशुद्ध रूप से कुलपति के विवेकाधिकार के भीतर है कि वह छात्र को निष्कासित करने वाले प्राचार्य के आदेश में हस्तक्षेप करे, लेकिन उस विवेकाधिकार का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि मामले के सभी तथ्यों को देखने के बाद किया जाना चाहिए जो या तो स्वतः या इच्छुक पक्ष के माध्यम से उसके संज्ञान में आए हैं। वह उन सभी तथ्यों की जांच करेगा और यदि उन्हें देखने के बाद लगता है कि उक्त आदेश में संशोधन की आवश्यकता है, तो वह मामले को सिंडिकेट के संज्ञान में ला सकता है, जिसका निर्णय तब अंतिम होगा। उसे केवल यह देखना नहीं है कि क्या निष्कासित छात्र को जगदीश लाई नारंग बनाम निर्धारण प्राधिकरण, करनाल और अन्य (तुली, जे) के खिलाफ निष्कासन का आदेश पारित होने से पहले अपनी स्थिति स्पष्ट करने का पर्याप्त अवसर दिया गया था। प्रधानाचार्य द्वारा। यह उन चीजों में से एक है जिसकी वह जांच करेंगे। लेकिन उनका हस्तक्षेप केवल उस हद तक सीमित नहीं है। यदि पूरे मामले की जांच करने के बाद, वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किसी विशेष मामले की परिस्थितियों में निष्कासन का आदेश नहीं मांगा गया था या कि छात्र के लिए जिम्मेदार कार्रवाई पंजाब विश्वविद्यालय कैलेंडर, 1969, खंड I के पृष्ठ 142 पर नियम 8 के अर्थ के भीतर घोर दुराचार या अनुशासनहीनता नहीं थी, तो वह इस मामले को सिंडिकेट के संज्ञान में यह कहते हुए ला सकता है कि प्रिंसिपल के आक्षेपित आदेश में संशोधन की आवश्यकता है। खंड I के नियम 8 के तहत, एक कॉलेज के प्राचार्य को घोर दुराचार या अनुशासनहीनता के लिए एक छात्र को निष्कासित करने या निष्कासित करने के लिए अधिकृत किया गया था, लेकिन सीनेट द्वारा बनाए गए नियमों के अधीन शक्ति का प्रयोग उसके द्वारा किया जाना था, और उन नियमों को खंड III के अध्याय XXXVIII में दिया गया था। इस संबंध में प्रधानाचार्य की शक्तियां, इससे पहले, असीमित नहीं हैं और वह उस संबंध में सीनेट द्वारा बनाए गए नियमों से बाध्य था और उन्हीं नियमों के तहत कुलपति को प्रधानाचार्य के आदेश को संशोधित करने की शक्ति दी गई थी। तत्काल मामले में, इसलिए, कुलपति ने गलती से अभिनिर्धारित किया था कि वह आक्षेपित आदेश में तभी हस्तक्षेप कर सकते हैं जब वह आश्वस्त हों कि प्राचार्य द्वारा याचिकाकर्ता के खिलाफ उक्त आदेश पारित किए जाने से पहले उसे पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था। इस पाठ्यक्रम को अपनाकर, याचिकाकर्ता को कुलपति द्वारा अपने पूरे मामले की फिर से जांच कराने के अपने अधिकार से वंचित कर दिया गया था।

(30) उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह रिट याचिका सफल हो जाती है और आक्षेपित आदेश को रद्द कर दिया जाता है। हालांकि, लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक

और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

आकांक्षा सैनी

प्रशिक्षु न्यायिक पदाधिकारी

सोनीपत(हरियाणा)